उपसंहार

उपसंहार

स्वतंत्रतापूर्व हिन्दी साहित्य के इतिहास में गिनी-चुनी महान लेखिकाएँ अपनी सशक्त लेखनी से प्रतिष्ठा पा लेती थीं जिनमें महादेवी वर्मा, सुभद्राकुमारी चौहान, सुमित्राकुमारी सिन्हा आदि के नाम उल्लेखनीय है। किन्तु स्वातंत्र्योत्तर काल में विशेष कर साठोत्तरी युग में हिन्दी साहित्य क्षेत्र में बहुत तेज़ी से महिला साहित्यकारों का वर्चस्व प्रभावपूर्ण ढंग से स्थापित हुआ।

समकालीन महिला उपन्यास लेखन पर परिवर्तित सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों का सर्वाधिक प्रभाव पड़ा है। स्वतंत्रता के पश्चात् परिवेश के बदलने के साथ-साथ विभिन्न स्तर के मानवमूल्य, सामाजिक मूल्य, प्राचीन, नैतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक मूल्य परिवर्तन हो चुके थे। समकालीन महिला उपन्यासकारों ने इस बदले हुए समाज को सूक्ष्म दृष्टि से देखा, परखा, पहचान लिया, अनुभव किया और उन अनुभूत सत्यों को शब्दबद्ध भी किया। साहित्य युगीन यथार्थ का प्रत्यक्ष रूप व समाज का दर्पण है। साहित्य के इस समाजधर्मी तत्व को अपनाकर महिला उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों की रचना की है। उनका रचना क्षेत्र बहुत विशाल रहा है। यद्यपि उन्होंने नारी होने के नाते स्त्री विमर्श का स्वर काफी प्रमुखता और गहनता से उभारा है तो भी स्थापित पुरुष उपन्यासकारों के उपन्यासों से इनके उपन्यासों को किसी मायने में अलग करके देखा नहीं जा सकता। कारण यह है कि उन्होंने पुरुष उपन्यासकारों के समान स्थानीय, राष्ट्रीय राजनीतिक, धार्मिक व सांस्कृतिक परिस्थितियों के साथ टूटते और बनते मूल्यों का गहन साक्षात्कार किया है और उसे अपने उपन्यासों में विस्तार के साथ चित्रित भी किया है। उन्होंने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में परिवर्तित होते हुए यथार्थ व मूल्यों को सामाजिक परिप्रेक्ष्य दिया है। उन्होंने देश में व्याप्त मूल्य संक्रमण, शोषित सामाजिक व्यवस्था, पारिवारिक जीवन के कटु यथार्थ, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, और सांस्कृतिक यथार्थ को बडी सरलता और ईमानदारी से चित्रित कर अपनी व्यापक दृष्टि का परिचय दिया है।

किसी भी वस्तु के वास्तविक रूप को यथार्थ कहा जाता है और किसी भी वस्तु को उसके मूल अर्थात यथार्थ रूप में संप्रेषित करना यथार्थवाद है। यथार्थवाद 19वीं शताब्दी की देन

है। यथार्थवाद जीवन की सच्चाइयों का आईना है इसलिए यथार्थवादी साहित्य जीवन के स्पन्दनों का साहित्य है। यथार्थ के कई रूप व प्रकार होते हैं जैसे समाजवादी, आदर्शोन्मुख, मनोवैज्ञानिक, प्रकृतिवादी, अति यथार्थ, ऐतिहासिक और सामाजिक यथार्थ। सामाजिक यथार्थवाद उस चित्रण को कहते हैं जिसमें समाज का यथार्थ अपनी भलाई व बुराई के साथ समाहित हो जाता है। साहित्य समाज का आईना होने के कारण सामाजिक यथार्थ की बहुस्तरीय अभिव्यक्ति साहित्य के माध्यम से ही पूर्ण हो सकती है। समकालीन महिला उपन्यासकार समाज से संजोये विविधोन्मुख सामाजिक यथार्थ को समाज की भलाई के लिए समाज को ही प्रदान कर अपने सामाजिक दायित्व को निभाती है।

वर्तमान युग में औद्योगीकरण, स्त्री शिक्षा, नारी स्वातंत्र्य, नारी की आत्मनिर्भरता, व्यक्ति स्वातंत्र्य की जिद, सामाजिक मूल्यों के संघर्ष, पाश्चात्य अनुकरण, विज्ञान तथा तकनीकी विकास, आधुनिकीकरण, धन की प्रचुरता, बदलती जीवन शैली आदि के कारण परिवार का ढाँचा बहुविध या बहुस्तरीय समस्याओं से ऊबकर जर्जर हो रहा है। परिवार विघटित होते जा रहे हैं। पारिवारिक रिश्तों में माधुर्य का अभाव, दरार व संवेदन शून्यता आ चुकी है। औद्योगीकरण तथा नगरीकरण के परिणाम स्वरूप शानदार संयुक्त परिवारों का तेज़ी से विघटन हो रहा है और अणुपरिवार बढ रहे हैं। फिर भी पारिवारिक जीवन समस्याओं की तह में ढह गया है, जो परिवर्तन तथा संक्रमण की स्थिति से गुज़र रहा है। हिन्दी की समकालीन महिला उपन्यासकारों ने अपने अनुभव की पृष्ठ भूमि में पारिवारिक जीवन के बहुआयामी जीवन्त चित्र यथार्थ और सूक्ष्मता के साथ अत्यन्त विस्तृत चित्र फलक पर अंकित किए हैं।

समकालीन महिला उपन्यासकारों ने उच्चवर्गीय और निम्न वर्गीय परिवारों की अपेक्षा घुटन एवं त्रासद परिस्थितियों को अधिकतर भोगनेवाले मध्यवर्गीय पारिवारिक जीवन की विसंगतियों को अधिक मात्रा में चित्रित किया है। कारण यह है कि अधिकतर महिला उपन्यासकार मध्यवर्ग की हैं। उनके उपन्यासों में संयुक्त परिवार का चित्रण बहुत ही कम पाया जाता है। अणु परिवार में आई खाई का अंकन अधिक है। पारिवारिक संस्था की रीढ परिवार के सदस्यों के अटूट संबन्ध है। लेकिन आज माँ-बाप-सन्तान, भाई-भाई, बहन-बहन, भाई-बहन, पति-पत्नी तथा परिवार के अन्य सदस्यों के संबन्धों में दरारें आ चुकी हैं। देखने में परिवार है किन्तु पारिवारिक सदस्यों के संबन्धों में स्नेह और सामंजस्य की जगह परस्पर द्वेष, तनाव एवं पीढ़ी संघर्ष दिखाई देता है।

पाश्चात्य प्रभाव के कारण परम्पराओं, मान्यताओं, नैतिकता तथा संस्कृति में अधःपतन हो रहा है। विवाह पूर्व तथा विवाहोत्तर स्त्री-पुरुष सम्बन्ध पनप रहे हैं। जिसके कारण परिवार में परम्परागत नैतिक मूल्यों का ह्रास होता दिखाई दे रहा है। महिला उपन्यासकारों ने पाश्चात्य प्रभाव, अर्थलोलुपता, आर्थिक विपन्नता, आर्थिक स्वातंत्र्य, आधुनिकता, महानगरीय परिवेश की जटिलता, स्वार्थता, व्यक्तिस्वातंत्र्य की भावना, भौतिकता, नारी जागरण, उत्तरदायित्व का ह्रास, व्यक्ति की आत्मकेंद्रित भावना आदि के कारण बिगडते व विघटित पारिवारिक संबन्धों का चित्रण करने के साथ-साथ शानदार व आदर्श भारतीय परिवारों का यथार्थ चित्रण भी कम मात्रा में किया है।

दाम्पत्य जीवन में मधुर सम्बन्ध स्थापित करने के लिए पति-पत्नी दोनों को समान रूप से एक दूसरे के प्रति वैयक्तिक और वैचारिक स्तर पर आदर और समझौता रखना चाहिए। किन्तु आज उसकी कमी हो रही है। इस उपन्यासकारों ने नारी की आर्थिक निर्भरता, समानाधिकार की भावना, नारी की अस्तित्ववादी विचारधारा, पुरुष की अहंवादीवृत्ति, वैचारिक भिन्नता, विवाह बाह्य आकर्षण, महत्वाकांक्षा, अनमेलविवाह, पुरुषमेधावी वृत्ति, मुक्त यौनसंबन्ध, सन्देह वृत्ति, आर्थिक अभाव आदि के कारण विघटित दाम्पत्यसंबन्धों का यथातथ्य चित्रण अत्यन्त ईमानदारी से किया है। उन्होंने यह महान सन्देश भी दिया है कि स्त्री-पुरुष सम्बन्ध अटूट है और आत्मा के अमरत्व से जुडा हुआ है। पारस्परिक सौहार्द, समझदारी, समर्पण, सहयोग, श्रद्धामय प्रेम आदि तत्वों पर अधिष्ठित दाम्पत्य सम्बन्ध ही अमरत्व प्राप्त कर सकता है। किन्तु ऐसे दाम्पत्य सम्बन्धों का चित्रण उनके उपन्यासों में बहुत ही कम है।

वर्तमान परिवेश की जटिलताओं ने विवाह जैसे पवित्र एवं स्थायी बन्धन को भी विविध स्तरीय समस्याओं में डुबो दिया है। इस सिलसिले में महिला उपन्यासकारों ने विवाह की प्राचीन सांस्कारिकता का लोप दिखाकर अनमेल विवाह, प्रेमविवाह, अंतर्जातीय विवाह, विधवा विवाह, दहेजप्रथा, विवाह विच्छेद जैसे समकालीन यथार्थ को भी रुपायित किया है। दहेज प्रथा को रोकने, योग्य जीवन साथी को चुनने व धार्मिक सुस्थिरता को कायम रखने के लिए आज प्रेमविवाह और अन्तर्जातीय विवाह को मान्यता मिल रही है किन्तु आधुनिकता के आकर्षण एवं अतिरिक्त स्वच्छन्दता के कारण प्रेम विवाह और अन्तर्जातीय विवाह भी टूट रहे हैं। दहेजप्रथा के कारण उत्पन्न अनमेलविवाह, ऋणग्रस्तता, मानसिक असंतुलन, पारिवारिक विघटन आदि ने पारिवारिक एवं सामाजिक व्यवस्था को खोखला बना दिया है। इसके अलावा आधुनिक शिक्षा व पाश्चात्य

सभ्यता से प्रभावित युवा पीढी विवाह को निरर्थकबन्धन मानकर मुक्तयौन संबन्ध में भी डूब जाती है। ये सारी समस्याएँ समकालीन सामाजिक यथार्थ है जो परिवार की नींव को हिला देती है। समकालीन महिला उपन्यासकार ने समसामायिक युगीन संदर्भ से सजग होकर इन पारिवारिक समस्याओं को दायित्व के साथ चित्रित किया है।

आधुनिक समाज अपनी विशेष उपलब्धियों के बावजूद जटिल हो गया है। आज अर्थ जीवन की धुरी बन गया है। आधुनिक जीवन में इन्सानियत की ऊँचाई नापने का पैमाना अर्थ रह गया है। इसलिए मनुष्य इन्सानियत को भूलकर अर्थप्राप्ति की भाग-दौड में नैतिक-अनैतिक, मान्य-अमान्य कार्य कर भ्रष्टाचार को बढ़ावा दे रहा है। अर्थ के आगे प्रेम, सहानुभूति, ममता, भ्रतृत्व, दया, करुणा जैसे नैतिक मूल्य निस्सार व तुच्छ हो चुके हैं। आज भी देश की अर्थव्यवस्था पर पूँजीवादी शक्तियों का ऐसा शिकंजा कसा जा रहा है कि जनसाधारण की अभावग्रस्त स्थिति में जनता गरीबी, बेरोज़गारी, महँगाई, भ्रष्टाचार और रिश्वतखोरी की शिकार होती चली गयी। विशेषतः मध्यवर्गीय लोग जीवन यापन की जटिलताओं से मुठभेड करते हुए यान्त्रिक बन गए हैं। समकालीन महिला उपन्यासकारों ने एक ओर आर्थिक अभाव, गरीबी, बेरोज़गारी, पूँजिपतियों का शोषण व भ्रष्टाचार, महंगाई व रिश्वतखोरी में पिसते मानव जीवन की विसंगतियों एवं विवशताओं का दारुण चित्र देकर हमारी सहानुभूति को जगाई है तो दूसरी ओर 'पुरुषों अर्थस्थ दास' मानकर अर्थप्राप्ति की भाग-दौड में शामिल हो रहे धनिक वर्ग एवं उच्चपदस्थ अफसरों की विलासिता, भ्रष्टाचार और अनैतिकता का भी पर्दाफाश किया है।

समकालीन लेखिकाओं के उपन्यासों में समकालीन घिनौनी, स्वार्थपरक, मूल्यहीन तथा अवसरवादी राजनीति के विविध रूपों का यथार्थ दर्शन पाया जाता है। आज की राजनीति केवल वायदों और फायदों में ही व्यक्त हुई है। समकालीन महिला लेखिकाओं ने राजनीति की अर्थहीनता एवं भ्रष्ट राजनीतिज्ञों के विरुद्ध भी लेखनी चलाई है। आज प्रजातंत्र प्रजा के लिए नहीं बल्कि धनी लोगों को कुर्सी हथियाने का तन्त्र बन गया है। राजनीतिज्ञों के चुनाव के पूर्व के आश्वासन एवं पदप्राप्ति के पश्चात् के कार्यों में दूरगामी अन्तर है। वर्तमान राजनीति में नीति को छोडकर अन्य सबकुछ मिलेगा। राजनीतिक सत्ता में सिद्धान्त और आदर्शों का लोप हो चुका है। प्रजातन्त्र के नाम पर कुर्सी हथियाने के हथकंडे, नोटों के बदले वोट की व्यावहारिक राजनीति, राजनीतिक दाँव-पेंच, सत्ताधारियों की स्वार्थ नीति, दलगत व जातिगत राजतंत्र, धोखेबाजी, बेईमानी, भ्रष्टाचार, सिफारिश

और रिश्वत के बल पर पनप रही नौकरशाही तथा उनके तहत दमघुटनेवाले बेचारे लोगों की दीन-हीन अवस्था की सफल प्रस्तुति इन लेखिकाओं के उपन्यासों में हुई है। उन्होंने गाँधीवादी आदर्श से आबद्ध युवा पीढ़ी आन्दोलन का चित्र भी कहीं-कहीं खींचा है। चुनाव के समय धर्म के नाम पर वोट हासिल करने की कूटनीति भी इनके उपन्यासों में पायी जाती है। कुछ लेखिकाओं ने जनकल्याण के लिए राजनीति में शामिल हुई नारी की प्रगति का सच्चा चित्रण भी किया है। लेकिन उल्लेखनीय बात यह है कि इन उपन्यासकारों के उपन्यासों में सामाजिक यथार्थ के अन्य पहलुओं की अपेक्षा राजनीतिक यथार्थ बहुत ही कम मात्रा में पाया जाता है।

धर्म और संस्कृति मनुष्य की प्रगति के साधन हैं। किन्तु आज आधुनिकता, वैज्ञानिकता और उपभोक्तावादी संस्कृति के प्रभाव से भारत की गौरवान धार्मिक चेतना, सांस्कृतिक चेतना व नैतिक जीवन मूल्यों में च्युति हो रही है। धर्म मनुष्य को सच्चाई, पवित्रता, आत्मनियंत्रण, कर्तव्यपरायणता, सहिष्णुता जैसे आध्यात्मिक गुणों का निर्वाह करने की प्रेरणा देता था। किन्तु आज मानव ने धर्म को स्वार्थलाभ या धनप्राप्ति का साधन बनाया है। भावुकता के स्थान पर आज बौद्धिकता अधिक मात्रा में पायी जाती है। आज श्रद्धा के स्थान पर सन्देह और आस्था के स्थान पर अनास्था का भाव अधिक है। समकालीन महिला उपन्यासकारों ने धर्म को समसामायिक स्थितियों, जीवनानुभव तथा परिवेश के माध्यम से नई चेतना के साथ प्रस्तुत किया है। कुछ लेखिकाओं ने ईश्वर के अस्तित्व के संबन्ध में प्रश्नचिह्न भी लगाया है किन्तु अधिकांशों ने ईश्वर के प्रति आस्थाभाव भी प्रकट किया है। पण्डा-पुरोहितों एवं साधु-सन्तों के आर्थिक लाभ उठानेवाले अनैतिक कार्य, भक्तों और यजमानों को धोखा देने के लिए बनानेवाले हथकण्डों का उन्होंने खुल्लम-खुल्ला चित्रण किया है। धार्मिक क्षेत्र में व्याप्त अस्पृश्यता व जातिवादिता की संकीर्णता की भी उन्होंने आलोचना की है। धर्म को सामाजिक परिप्रेक्ष्य में प्रतिष्ठा करके उन्होंने यह स्वीकार किया है कि जब तक धार्मिक अन्धविश्वास एवं रूढियाँ समाप्त नहीं होती तब तक न व्यक्ति का उद्धार हो सकता है न समाज या देश का विकास भी।

मनुष्य की श्रेष्ठ नीतियाँ एवं साधनाएँ संस्कृति के अंतर्गत आती हैं। आर्षभारत संस्कार पर कायम रहे हमारे परिवार, समाज, एवं देश आज उपभोक्तावादी संस्कृति के अधीन में गिरावट की सीमा तक आ गये हैं। भारत की शानदार संस्कृति आज मृतप्राय हो चुकी है। धर्म एवं संस्कृति को आत्मसात करने की प्रवृत्ति महिलाओं में विशेष रूप से होती है। यही कारण है कि समकालीन

महिला उपन्यासकारों ने एक ओर आदर्श भारतीय संस्कृति की दिव्यता एवं भव्यता की सुरक्षा की है तो दूसरी ओर पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव के कारण भारतीय संस्कृति में आयी अनेक विकृतियों का भी विवेचन किया है। उनके उपन्यासों में भारतीय संस्कृति की विश्वबन्धुत्व एवं लोककल्याण की भावना, समन्वय भावना की अभिव्यक्ति है तथा प्राचीन रूढि एवं रीति-रिवाज़ों का चित्रण भी है। ग्रामीण संस्कृतियों के चित्रण में व्रत, त्योहार, लोककथा और लोकगीतों का अंकन है। भारतीय संस्कृति के नैतिकमूल्यों को तहस-नहस करनेवाली उपभोक्तावादी संस्कृति के प्रति ये लेखिकाएँ सजग हैं। समाज के समस्त क्षेत्र में आ गये भोगवाद, उन्मुक्तता एवं विलासिता को उन्होंने आलोचनाभरी दृष्टि से अभिव्यक्त किया है। इस संस्कृति की तह में मानवीय संवेदना व संबन्ध भी टूट चुका है। इस टूटते संबन्धों व रिस्ती मानवीय संवेदनाओं का दारुण चित्र उनके उपन्यासों में उपलब्ध है।

समकालीन महिला उपन्यासकारों ने आधुनिक जीवन मूल्यों के बीच संघर्षरत नारी जीवन यथार्थ को तराशने का प्रयास किया है। लेखिकाएँ मुख्यतः गहनता के साथ इस चेतना का साक्षात्कार करती है कि शिक्षा प्रसार, संवैधानिक समानाधिकार एवं आर्थिक आत्म निर्भरता के बावजूद नारी अपना संपूर्ण व्यक्तित्व स्वतन्त्र इकाई के रूप में पुरुष प्रधान समाज में निर्मित नहीं कर पा रही है। पुरुषवर्चस्वता के समाज में उसका शोषण अभी चल रहा है। सदियों से उत्पीडित, समर्पित, रीढहीन, विचारहीन स्त्री की यातनाओं, मनोव्यथा, उनपर लादे गए नैतिक प्रतिमानों को पहचाने, समझने, परखने, उसके उत्पीडन के विविध आयाम को व्यक्त करने, व बेबसी से कहने का साहस महिला उपन्यासकारों में ही हुआ है। उन्होंने स्त्री के बाहरी उत्पीडन, संघर्ष और भेद-भाव को हीं नहीं दर्शाया है बल्कि स्त्री के अन्तर्मन को झांककर उसकी पीड़ा को समझा है और उसकी यौन असन्तुष्टि को सबके सामने उजागर करने का साहसिक कार्य भी किया है।

समकालीन महिला उपन्यासकारों ने अकेलापन को झेलनेवाली नारियों की मुसीबतों का चित्रण भी किया है। यदि नारी कामकाजी नहीं है तो परिवारवालों के तिरस्कार के कारण उसमें अकेलापन एवं अजनबीपन की भावनाएँ पनप उठती हैं। अणु परिवारों की भरमार, दाम्पत्य सम्बन्धों के तनाव, पारिवारिक शिथिलता, मानवीय संवेदनाओं का ह्रास आदि के कारण शिक्षित व आत्म निर्भर नारी भी पारिवारिक संघर्ष के चक्कर में पडकर अकेलापन को झेलती है। विवाहित और अविवाहित नारी भी विवशतावश अकेलेपन के शिकंजे में पिसती नज़र आती है।

महिला उपन्यासकारों ने इस तरह की नारियों की दर्दभरी ज़िन्दगी का चित्र मार्मिक ढंग से खींचा है। उन्होंने विधवा जीवन की समस्याओं को शब्द बद्ध करने के साथ-साथ उनका उद्धार करने हेतु विधवा विवाह का समर्थन भी किया है किन्तु यह भी सूचित किया है कि पुरुष वर्चस्वता एवं मानसिक उदारता के अभाव के कारण विधवा जीवन आज भी दुःखद एवं कष्टदायक है। इन लेखिकाओं ने वेश्याओं के दर्दभरी जीवन को वाणी देने के साथ उन्हें पतन के इस गर्त में डालनेवाली आर्थिक व्यवस्था पर प्रहार भी किया है।

समकालीन महिला उपन्यासकारों ने कामकाजी महिलाओं की पीडा को यथार्थ के धरातल पर अवलोकित किया है। उन्होंने अपने उपन्यासों के ज़रिए नारी को यह सिखाया है कि उसे अपने व्यक्तित्व और अस्तित्व को बनाए रखने, पुरुष के समान मानवीय व सामाजिक धरातल पर स्वयं को स्वतंत्र करने के लिए शिक्षित, जागरूक और आत्मनिर्भर बनना चाहिए। किन्तु उल्लेखनीय बात यह है कि आज कामकाजी नारी की स्थिति भी समस्याग्रस्त बन चुकी है। उनके सामने बच्चों की, परिवेश की, पति के सन्देह की व पुरुष सहकर्मियों के यौनशोषण की समस्याएँ हैं। अधिकांश अविवाहित कामकाजी महिलाएँ परिवार में धनोपार्जन का एक साधन मात्र रह गयी हैं। महिला उपन्यासकारों ने नारी को सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, दैहिक और मानसिक शोषण से मुक्ति का मार्ग दिखाकर स्वतन्त्र अस्तित्व निर्माण के लिए प्रोत्साहन दिया है।

पारिवारिक समस्याओं से जूझकर, समाज की रूढ़ परम्पराओं को तोड़कर, अनीति और अत्याचार से विद्रोह कर अपने अस्तित्व को कायम रखनेवाली नारी चेतना महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों की सबसे बडी विशेषता है। समसामयिक नारी अपने अधिकारों के प्रति जागरूक है। नारी के स्वतन्त्र अस्तित्व की पैरवी करनेवाली लेखिकाएँ परम्परागत बन्धनों को अस्वीकार कर अपनी स्वतन्त्र पहचान का निर्माण करनेवाली नारियों के चित्रण में सफल रही हैं। समसामयिक नारी धर्म, परम्परा आदि की मर्यादा को छोड अपना पथ स्वयं प्रशस्त कर रही है। उसमें विद्रोह व प्रतिरोध की भावना बलवत्ती हो रही है। महिला उपन्यासकारों ने अन्याय के प्रति विद्रोह करनेवाली या परम्परागत रूढियों को तोडकर अपने अधिकारों को हासिल करने में सक्षम हुई नारियों का चित्रण सहज और प्रभावी ढंग से किया है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि हिन्दी की समकालीन महिला उपन्यासकारों के उपन्यास विकास के पथ पर अनेक मोडों को पार करते हुए सामाजिक यथार्थ के विशाल चित्रपट पर अपनी

महत्ता रेखांकित कर रहे हैं। उन्होंने समकालीन यथार्थ के प्रति सजग दृष्टि डाली है और उसे सार्थक अभिव्यक्ति भी प्रदान की है। उनके उपन्यासों में समकालीन बदलते परिवेश में मध्यवर्गीय एवं उच्च मध्यवर्गीय जीवन की गहन पडताल अधिकतर दृष्टिगोचर होती है। इन उपन्यासों में पारिवारिक जीवन के संत्रास, घुटन, विघटन, अकेलापन, अजनबीपन एवं निराशा की त्रासद स्थितियों व नारी जीवन यथार्थ को गहनता अधिकार एवं विस्तार से उद्‌घाटित किया गया है तो साथ ही अर्थ, राजनीति, धर्म और संस्कृति के क्षेत्र में व्याप्त रूढि, अनाचार अन्धविश्वासों, आर्थिक विषमता, राजनीतिक पतन, धार्मिक मूल्यच्युति और सांस्कृतिक गिरावट आदि का यथातथ्य चित्रण अत्यन्त सूक्ष्म ढंग से करने का सफल प्रयास भी हुआ है। हिन्दी की समकालीन महिला उपन्यासकार ने हिन्दी उपन्यास के परिदृश्य को ज़्यादा संवेदनशील, स्नेहार्द और मानवीय बनाया है जो सराहनीय और मूल्यवान है।